

Chapter इक्कीस

सूर्य की गतियों का वर्णन

इस अध्याय में सूर्य की गतियों का वर्णन हुआ है। सूर्य स्थिर नहीं है, यह भी अन्य ग्रहों की भाँति गतिमान है। सूर्य की गतियों से दिन और रात्रि की अवधि का निर्धारण होता है। जब सूर्य विषुवत् रेखा के उत्तर में यात्रा करता है, तो वह दिन में अत्यन्त मन्द तथा रात्रि में अत्यन्त तेजी से गति करता है, जिससे दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं। इसी प्रकार जब सूर्य विषुवत् रेखा के दक्षिण में गति करता है, तो इसके विपरीत होता है—दिन छोटे तथा रातें लम्बी होती हैं। जब सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करके सिंह राशि से होता हुआ धनु राशि में पहुँचता है, तो उसके पथ को दक्षिणायन कहा जाता है। इसी प्रकार जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करके कुम्भ राशि से होता हुआ मिथुन राशि में पहुँचता है, तो इस पथ को उत्तरायण कहते हैं। जब सूर्य मेष तथा तुला राशियों में रहता है, तो दिन और रात समान होते हैं।

मानसोत्तर पर्वत में चार देवताओं का निवास है। सुमेरु पर्वत के पूर्व स्थित देवधानी में राजा इन्द्र का तथा सुमेरु के दक्षिण स्थित संयमनी में मृत्यु के अधीक्षक यमराज का वास है। इसी प्रकार सुमेरु के पश्चिम निम्लोचनी में जल के स्वामी वरुण का आवास है। सुमेरु के उत्तर में विभावरी है जहाँ चन्द्र देवता निवास करता है। इन सभी स्थानों में सूर्य की गति के कारण प्रातः, मध्याह्न, सूर्यास्त तथा

अर्धरात्रि होती है। सूर्योदय के स्थान के ठीक सामने सूर्यास्त होता है। इसी प्रकार जहाँ मध्याह्न है उसके ठीक सामने की ओर के प्राणी अर्धरात्रि का अनुभव करते हैं। सूर्य अन्य समस्त ग्रहों समेत, जिनमें चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्र प्रमुख हैं, उदय और अस्त होता रहता है।

सम्पूर्ण कालचक्र सूर्यदेव के रथ के चक्र पर स्थापित है। यह चक्र संवत्सर कहलाता है। सूर्य के रथ को खींचने वाले सातों अश्व गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप तथा पंक्ति कहलाते हैं। वे अरुणदेव नामक देवता द्वारा ९,००,००० योजन चौड़े जुए में जोते जाते हैं। इस प्रकार यह रथ आदित्यदेव अथवा सूर्यदेव को ले जाता है। सूर्यदेव के समक्ष सदैव स्तुति करते हुए वालिखिल्य नामक साठ हजार ऋषि रहते हैं। प्रत्येक मास सूर्यदेव के माध्यम से विभिन्न नामों से श्रीभगवान् की आराधना करने वाले चौदह गंधर्व, अप्सराएँ तथा सात श्रेणियों में विभक्त अनेक देवता हैं। इस प्रकार सूर्यदेव १६,००४ मील प्रति क्षण की गति से इस ब्रह्माण्ड की ९,५१,००,००० योजन (७६०,८००,००० मील) की प्रदक्षिणा करता है।

श्रीशुक उवाच

एतावानेव भूवल्यस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एतावान्—इतना; एव—ही; भू-वल्यस्य सन्निवेशः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की योजना; प्रमाण-लक्षणतः—लक्षणों तथा माप के अनुसार (पचास करोड़ योजन या ४ अरब लम्बाई तथा चौड़ाई); व्याख्यातः—अनुमान किया गया।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे राजन्, मैंने यहाँ तक आपसे विद्वानों के अनुमानों के आधार पर ब्रह्माण्ड के व्यास (पचास करोड़ योजन या ४ अरबमील) तथा इसके सामान्य लक्षणों का वर्णन किया है।

एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसन्धितम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

एतेन—इस अनुमान के आधार पर; हि—निस्सन्देह; दिवः—स्वर्गलोक का; मण्डल-मानम्—गोलक का परिमाण(माप); तत्-विदः—इसको जानने वाले विद्वज्जन; उपदिशन्ति—उपदेश देते हैं; यथा—जिस प्रकार; द्वि-दलयोः—दो अर्द्धभागों में; निष्पाव-आदीनाम्—अन्न के दाने यथा गेहूँ के; ते—दो विभागों का; अन्तरेण—बीच के स्थान में; अन्तरिक्षम्—आकाश या बाह्य-आकाश; तत्—दोनों के द्वारा; उभय—दोनों ओर; सन्धितम्—जहाँ दोनों भाग जुड़े हैं।

जिस प्रकार गेहूँ के दाने को भागों में विभाजित कर देने पर निचले भाग के परिमाण

(आकार) का ज्ञान होने पर ऊपरी भाग का पता लगाया जाता है उसी प्रकार भूगोलवेत्ताओं का कहना है कि इस ब्रह्माण्ड के ऊपरी भाग की माप को तभी समझा जा सकता है, जब निचले भाग की माप ज्ञात हो। भूलोक तथा द्युलोक के बीच का आकाश अन्तरिक्ष अथवा बाह्य-आकाश कहलाता है। यह भूलोक की चोटी तथा द्युलोक के निचले भाग को जोड़ता है।

यन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैश्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिस (मध्यावकाश) का; मध्य-गतः—मध्य में स्थित होने से; भगवान्—सर्वशक्तिमान; तपताम् पतिः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को तपाने वालों का स्वामी; तपनः—सूर्यः; आतपेन—ताप से; त्रि-लोकीम्—तीनों लोकों को; प्रतपति—तप्त करता है; अवभासयति—प्रकाशित करता है; आत्म-भासा—अपनी भास्कर किरणों से; सः—वह; एषः—सूर्यगोलक; उदगयन—विषुवत रेखा के उत्तर की ओर गमन का; दक्षिण-अयन—विषुवत रेखा के दक्षिण गमन का; वैषुवत—अथवा विषुवत रेखा पार करने का; संज्ञाभिः—विभिन्न नामों से; मान्द्य—मन्दता से; शैश्य—शीघ्रता से; समानाभिः—तथा समानता से; गतिभिः—गति से; आरोहण—ऊपर जाने; अवरोहण—नीचे जाने की; समान—मध्य में स्थित रहने की; स्थानेषु—स्थितियों में; यथा-सवनम्—श्रीभगवान् की आज्ञानुसार; अभिपद्यमानः—गति करते हुए; मकर-आदिषु—मकर आदि; राशिषु—विभिन्न राशियों में; अहः-रात्राणि—दिन तथा रात्रियाँ; दीर्घ—लम्बे; ह्रस्व—छोटे; समानानि—समान; विधत्ते—करता है।

उस अन्तरिक्ष के मध्य में ताप उत्पन्न करने वाले समस्त ग्रहों का राजा परम तेजवान सूर्य है जो अपने प्रकाश से समस्त ब्रह्माण्ड को तप्त करता है और उसको वास्तविक स्वरूप प्रदान करता है। यह समस्त जीवात्माओं को प्रकाश प्रदान करता है, जिससे वे देख पाते हैं। श्रीभगवान् की आज्ञानुसार वह उत्तरायण, दक्षिणायन होकर या विषुवत रेखा को पार करते हुए मन्द, शीघ्र और मध्यम गतियों से घूमता हुआ समयानुसार मकरादि राशियों में ऊँचे-नीचे और समान स्थानों में जाकर दिन तथा रात को बड़ा, छोटा या समान बनाता है।

तात्पर्य : ब्रह्म-संहिता (५.५२) में भगवान् ब्रह्मा की स्तुति है—

यच्चक्षुरेष सवितासकलग्रहाणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।

यस्याज्ञया भ्रमति संवृतकालचक्रो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन आदिदेव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द की आराधना करता हूँ, जिनके नियंत्रण में ईश्वर

के नेत्र माने जाने वाले सूर्य भी काल की स्थिर कक्ष्या में घूमते हैं। सूर्य समस्त लोकों का राजा है और उसमें असीम ताप तथा प्रकाश-शक्ति है।” यद्यपि सूर्य को भगवान् अर्थात् सर्वशक्तिमान कहा गया है और सचमुच ही यह इस ब्रह्माण्ड का सर्वशक्तिमान ग्रह है फिर भी इसे गोविन्द अर्थात् श्रीकृष्ण का आदेश-पालन करना होता है। सूर्यदेव अपनी निर्धारित परिधि से एक इंच भी विचलित नहीं हो सकते। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र में श्रीभगवान् के परमादेश का पालन होता है। सम्पूर्ण भौतिक प्रकृति उनके आदेश का पालन करती है। किन्तु अज्ञानवश हम प्रकृति की क्रियाओं के पीछे भगवान् को तथा उनके परमादेश को नहीं समझ पाते। जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः* अर्थात् यह भौतिक प्रकृति ईश्वर के आदेशों का पालन करती है, जिससे सभी वस्तुओं का नियमन होता है।

यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु. ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; मेष-तुलयोः—मेष तथा तुला राशियों में; वर्तते—सूर्य रहता है; तदा—उस समय; अहः-रात्राणि—दिन तथा रातें; समानानि—समान अवधि की; भवन्ति—होती हैं; यदा—जब; वृषभ-आदिषु—वृषभ, मिथुन आदि; पञ्चसु—पाँच; च—भी; राशिषु—राशियों में; चरति—घूमता है; तदा—उस समय; अहानि—दिन; एव—निश्चय ही; वर्धन्ते—बढ़ते हैं; ह्रसति—घटते हैं; च—भी; मासि मासि—प्रत्येक मास में; एक-एका—एक; घटिका—आधा घंटा; रात्रिषु—रातों में।

जब सूर्य मेष या तुला राशि पर आता है, तो दिन और रात की अवधि समान हो जाती है।

जब यह वृषभ इत्यादि पाँचों राशियों पर से गुजरता है, तो दिन (कर्क तक) बढ़ता जाता है और तब प्रति मास आधा घंटा घटता रहता है, जब तक दिन तथा रात्रि पुनः (तुला में) समान नहीं हो जाते।

यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति. ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; वृश्चिक-आदिषु—वृश्चिक इत्यादि; पञ्चसु—पाँच; वर्तते—रहता है; तदा—उस काल; अहः-रात्राणि—दिन तथा रात; विपर्ययाणि—इसके विपरीत (दिन घटता और रात बढ़ती है); भवन्ति—होते हैं।

जब सूर्य वृश्चिक इत्यादि पाँच राशियों से होकर गुजरता है, तो दिन घटता है (जब तक यह मकर राशि पर नहीं आ जाता) और फिर क्रमशः मास प्रति मास बढ़ता जाता है जब तक दिन और रात समान (मेष पर) नहीं हो जाते।

यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः. ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; दक्षिण-अयनम्—सूर्य दक्षिण को चला जाता है; अहानि—दिन; वर्धन्ते—बढ़ते हैं; यावत्—जब तक; उदगयनम्—सूर्य उत्तर को जाता है (उत्तरायण); रात्रयः—रातें।

सूर्य के दक्षिणायन होने तक दिन बढ़ते रहते हैं और उत्तरायण होने तक रातें लम्बी होती जाती हैं।

एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नैन्दीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्धारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; नव—नौ; कोटयः—करोड़; एक-पञ्चाशत्—इक्यावन; लक्षाणि—लाख; योजनानाम्—योजनों का; मानसोत्तर-गिरि—मानसोत्तर पर्वत की; परिवर्तनस्य—परिक्रमा का; उपदिशन्ति—वे (विद्वान्) उपदेश देते हैं; तस्मिन्—उस पर्वत पर; ऐन्दीम्—इन्द्र की; पुरीम्—पुरी, नगर; पूर्वस्मात्—पूर्व दिशा में; मेरोः—सुमेरु पर्वत की; देवधानीम्—देवधानी; नाम—नामक; दक्षिणतः—दक्षिण दिशा में; याम्याम्—यमराज का; संयमनीम्—संयमनी; नाम—नामक; पश्चात्—पश्चिम दिशा में; वारुणीम्—वरुण का; निम्लोचनीम्—निम्लोचनी; नाम—नामक; उत्तरतः—उत्तर दिशा में; सौम्याम्—चन्द्रमा का; विभावरीम्—विभावरी; नाम—नामक; तासु—इन सबों में; उदय—सूर्योदय; मध्याह्न—दोपहर; अस्तमय—सूर्यास्त; निशीथानि—अर्धरात्रि; इति—इस प्रकार; भूतानाम्—जीवात्माओं की; प्रवृत्ति—क्रियाशीलता; निवृत्ति—क्रियाशीलता का अन्त; निमित्तानि—कारण; समय-विशेषण—विशेष समय द्वारा; मेरोः—सुमेरु पर्वत की; चतुः-दिशम्—चारों दिशाएँ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी आगे बोले—हे राजन्, जैसा पहले कह चुका हूँ पण्डितों का कहना है कि मानसोत्तर पर्वत के चारों ओर सूर्य का परिक्रमा-पथ ९,५१,००,००० (नौ करोड़ इक्यावन लाख) योजन (७६ करोड़ आठ लाख मील) है। मानसोत्तर पर्वत पर मेरु के पूर्व की ओर इन्द्र की देवधानी, दक्षिण में यमराज की संयमनी, पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी तथा उत्तर में चन्द्रमा की विभावरी नामक पुरियाँ स्थित हैं। इन सभी पुरियों में मेरु के चारों ओर विशिष्ट कालों के अनुसार सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त तथा अर्धरात्रि होती रहती है और तदनुसार समस्त जीवात्माएँ अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त अथवा निवृत्त होती रहती हैं।

तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति; यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥ ८९ ॥

शब्दार्थ

तत्रत्यानाम्—मेरु पर्वत पर रहने वाली जीवात्माओं के लिए; दिवस-मध्यङ्गतः—मध्याह्नकालीन; एव—ही; सदा—सदैव; आदित्यः—सूर्य; तपति—तपता है; सव्येन—वाम दिशा की; अचलम्—सुमेरु पर्वत; दक्षिणेन—दक्षिण को (दक्षिण को बहते पवन से प्रेरित होकर सूर्य दक्षिण को जाता है); करोति—चलता है; यत्र—जहाँ; उदेति—उदय होता है; तस्य—उस स्थान का;

ह—निश्चय ही; समान-सूत्र-निपाते—सर्वथा विपरीत दिशा वाले बिन्दु पर ठीक दूसरी ओर; निम्लोचति—सूर्यास्त होता है; यत्र—जहाँ; क्वचन—कहीं; स्यन्देन—पसीने से; अभितपति—तपता है (मध्याह्न में); तस्य—उसका; ह—ही; एषः—यह (सूर्य); समान-सूत्र-निपाते—एकदम विपरीत बिन्दु पर ठीक दूसरी ओर; प्रस्वापयति—सूर्य सुलाता है (अर्द्धरात्रि में); तत्र—वहाँ; गतम्—गया हुआ; न पश्यन्ति—नहीं देखते; ये—जो; तम्—सूर्यास्त; समनुपश्येरन्—देखते हुए।

सुमेरु पर्वत पर रहने वाले प्राणी मध्याह्न के समय सदा ही अत्यन्त तप्त होते हैं, क्योंकि सूर्यदेव सदैव उनके सिर के ऊपर रहता है। यद्यपि सूर्य घड़ी की विपरीत दिशा में सुमेरु पर्वत को अपने बाईं ओर छोड़ता हुआ जाता है, किन्तु यह घड़ी की दिशा में भी घूमता है, जिससे पर्वत उसके दाईं ओर रहता दिखता है, क्योंकि उस पर दक्षिणावर्त पवन का प्रभाव पड़ता है। जहाँ सर्वप्रथम उदय होता सूर्य दिखता है, उसके ठीक दूसरी ओर वह अस्त होता दिखता है। उससे होकर एक सीधी रेखा खींची जाये तो इस रेखा के दूसरे सिरे के प्राणी मध्यरात्रि का अनुभव कर रहे होंगे। इसी प्रकार यदि अस्ताचल के प्राणी अपनी ठीक दूसरी ओर स्थित देशों में जायें तो उन्हें सूर्य उसी स्थिति में नहीं मिलेगा।

यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति. ॥ १० ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; च—तथा; ऐन्द्र्याः—इन्द्र की; पुर्याः—पुरी से; प्रचलते—चलता है, गति करता है; पञ्चदश—पन्द्रह; घटिकाभिः—आधे घंटे की अवधि (वस्तुतः चौबीस मिनट); याम्याम्—यमराज के आवास तक; सपाद-कोटि-द्वयम्—सवा दो करोड़ (२,२५,००,०००); योजनानाम्—योजनों का; सार्ध—तथा आधा; द्वादश-लक्षाणि—बारह लाख; साधिकानि—पचास हजार अधिक; च—तथा; उपयाति—ऊपर से जाता है।

सूर्य इन्द्र की पुरी देवधानी से यमराज की पुरी संयमनी तक पन्द्रह घड़ियों (छः घंटे) में कुल मिलाकर २,३७,७५,००० योजन (१९,०२,००,०००) की यात्रा करता है।

तात्पर्य : साधिकानि शब्द से पंचविंशति-सहस्राधिकानि अथवा २५,००० योजन की दूरी का अर्थ निकलता है। इस प्रकार इन दोनों पुरियों की दूरी जिसकी सूर्य यात्रा करता है दो करोड़ पचास लाख और साढ़े बारह लाख योजन है। यह दूरी २,३७, ७५,००० योजन अथवा १९,०२,००,००० मील है। सूर्य की पूरी परिक्रमा इस दूरी की चौगुनी अर्थात् ९,५१,००,००० योजन (७६,०८,००,००० मील) है।

एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथान्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति. ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; ततः—वहाँ से; वारुणीम्—वरुण की पुरी तक; सौम्याम्—पुरी जहाँ चन्द्रमा निवास करता है; ऐन्त्रीं च—और वह पुरी जहाँ इन्द्र निवास करता है; पुनः—फिर; तथा—इस तरह; अन्ये—अन्य; च—भी; ग्रहाः—ग्रह; सोम-आदयः—चन्द्रमा इत्यादि; नक्षत्रैः—सभी नक्षत्रों के; सह—साथ; ज्योतिः-चक्रे—स्वर्गीय गोलक में; समभ्युद्यन्ति—उदय होते हैं; सह—के साथ; वा—अथवा; निम्लोचन्ति—अस्त होते हैं।

सूर्य यमराज की पुरी से वरुण की पुरी निम्लोचनी पहुँचता है और फिर वहाँ से चन्द्रदेव की पुरी विभावरी से होते हुए पुनः इन्द्रपुरी पहुँच जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमा अन्यत्र नक्षत्रों तथा ग्रहों सहित ज्योतिश्चक्र में उदित और अस्त होता रहता है।

तात्पर्य : भगवद्गीता (१०.२१) में श्रीकृष्ण कहते हैं—*नक्षत्राणां अहं शशी*—“मैं नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ।” इससे यह सूचित होता है कि चन्द्रमा अन्य नक्षत्रों के समान है। वैदिक साहित्य से विदित होता है कि इस ब्रह्माण्ड में एक ही सूर्य है जो गतिवान है। वैदिक साहित्य से इस पाश्चात्य सिद्धान्त की पुष्टि नहीं हो पाती कि आकाश के सभी ज्योतिपुंज विभिन्न सूर्य हैं। न ही हम यह मान सकते हैं कि ये नक्षत्र अन्य ब्रह्माण्डों के सूर्य हैं, क्योंकि प्रत्येक ब्रह्माण्ड के चारों ओर भौतिक तत्त्वों के अनेक स्तर होते हैं और इस प्रकार यद्यपि अनेक ब्रह्माण्ड संपुंजित हैं, किन्तु तो भी हम एक ब्रह्माण्ड से दूसरे को नहीं देख पाते। तात्पर्य यह है कि हम केवल इसी ब्रह्माण्ड के भीतर देख सकते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड का एक ब्रह्मा होता है और अन्य ग्रहों पर भी देवता हैं, किन्तु सूर्य केवल एक है।

एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरौ रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥
१२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मुहूर्तेन—एक मुहूर्त(४८ मिनट) में; चतुः-त्रिंशत्—चौतीस; लक्ष—लाख; योजनानि—योजन; अष्ट-शताधिकानि—आठ सौ और; सौरः रथः—सूर्यदेव का रथ; त्रयी-मयः—जो गायत्री मंत्र द्वारा पूजित है.); असौ—वह; चतसृषु—चारों से होकर; परिवर्तते—घूमता है; पुरीषु—पुरियों से होकर।

इस प्रकार त्रयीमय अर्थात् ॐ भूर्भुवः स्वः शब्दों द्वारा पूजित सूर्यदेव का रथ ऊपर वर्णित चारों पुरियों से होकर एक मुहूर्त में ३४,००,८०० योजन (२,७२,०६,४०० मील) की गति से घूमता रहता है।

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्णेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; एकम्—एक; चक्रम्—चक्र; द्वादश—बारह; अरम्—अरे, तीलियाँ; षट्—छः; नेमि—नेमि (रिम); त्रिणाभि—नाभि (हब) के तीन खंड (आँवने); संवत्सर-आत्मकम्—संवत्सर स्वरूप; समामनन्ति—पूर्णतया वर्णन करते हैं; तस्य—सूर्यदेव का रथ; अक्षः—धुरी (एक्सल); मेरोः—सुमेरु पर्वत की; मूर्धनि—चोटी पर; कृतः—स्थिर; मानसोत्तरे—मानसोत्तर पर्वत पर; कृत—जड़ा हुआ, लगा; इतर-भागः—दूसरा सिरा; यत्र—जहाँ; प्रोतम्—लगा हुआ; रवि-रथ-चक्रम्—सूर्यदेव के रथ का चक्र; तैल-यन्त्र-चक्र-वत्—कोल्हू के समान; भ्रमत्—घूमते हुए; मानसोत्तर-गिरौ—मानसोत्तर पर्वत पर; परिभ्रमति—घूमता है।

सूर्यदेव के रथ में एक ही चक्र है, जिसे संवत्सर कहते हैं। बारहों महीने इसके बारह अरे, छह ऋतु, छः नेमियाँ (हाल) तथा तीन चार्तुमास इसके तीन भागों में विभाजित आँवने (नाभि) हैं। चक्र को धारण करने वाले धुरे का एक सिरा सुमेरु पर्वत की चोटी पर और दूसरा सिरा मानसोत्तर पर्वत पर टिका है। धुरे के बाहरी सिरे पर लगा यह पहिया कोल्हू के चक्र की भाँति निरन्तर मानसोत्तर पर्वत के चक्कर लगाता है।

तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन सम्मितस्तैलयन्त्राक्षवद्ध्रुवे कृतोपरिभागः॥ १४॥

शब्दार्थ

तस्मिन् अक्षे—उस धुरे में; कृत-मूलः—जिसका मूल भाग लगा है; द्वितीयः—दूसरा; अक्षः—धुरा; तुर्यमानेन—चौथाई; सम्मितः—मापा गया; तैल-यन्त्र-अक्ष-वत्—कोल्हू के धुरे के समान; ध्रुवे—ध्रुव लोक तक; कृत—लगा हुआ; उपरि-भागः—ऊपरी भाग।

कोल्हू के समान यह पहली धुरी एक दूसरी धुरी में लगी है जो इसकी चौथाई के बराबर लम्बी (३९,३७,५०० योजन अथवा ३,१५,००,००० मील) है। इस द्वितीय धुरी का ऊपरी भाग वायु की रस्सी द्वारा ध्रुवलोक से जुड़ा है।

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावात्रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तरुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम्॥ १५॥

शब्दार्थ

रथ-नीडः—रथ का भीतरी भाग; तु—लेकिन; षट्-त्रिंशत्-लक्ष-योजन-आयतः—३६,००,००० योजन लम्बा; तत्-तुरीय-भाग—इसका चौथाई भाग (९,००,००० योजन); विशालः—चौड़ाई वाला; तावान्—तथा इतना ही; रवि-रथ-युगः—घोड़े के लिए जुआँ; यत्र—जहाँ; हयाः—घोड़े; छन्दः-नामानः—वैदिक छन्दों के विभिन्न नाम वाले; सप्त—सात; अरुण-योजिताः—अरुणदेव द्वारा नाथे गये; वहन्ति—ले जाते हैं; देवम्—देवता; आदित्यम्—सूर्यदेव को।

हे राजन्, रथ का भीतरी भाग ३६,००,००० योजन (२,८८,००,००० मील) लम्बा तथा इसका एक चौथाई चौड़ा ९,००,००० योजन तथा ७२,००,०००) है। रथ के घोड़ों के नाम गायत्री आदि वैदिक छन्दों पर रखे गये हैं और उन्हें अरुणदेव ऐसे जुएँ में जोतता है जो ९,००,००० योजन चौड़ा है। यह रथ लगातार सूर्यदेव को लिये रहता है।

तात्पर्य : विष्णु पुराण में कहा गया है—

गायत्री च बृहत्युष्णिग् जगती त्रिष्टुपेव च ।

अनुष्टुप-पंक्तिरित्युक्ताश्छंदांसि हरयो रवेः ॥

सूर्यदेव के रथ में जुते सातों घोड़े गायत्री, बृहति, जगती, उष्णिक्, त्रिष्टुप, अनुष्टुप तथा पंक्ति कहलाते हैं। विभिन्न वैदिक छन्द सूर्य के रथ को खींचने वाले सातों अश्वों के परिचायक हैं।

पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

पुरस्तात्—सम्मुख; सवितुः—सूर्यदेव के; अरुणः—अरुण नामक देवता; पश्चात्—पीछे देखता हुआ; च—तथा; नियुक्तः—संलग्न; सौत्ये—रथ के; कर्मणि—कार्य में; किल—निश्चय ही; आस्ते—रहता है।

यद्यपि अरुणदेव सूर्यदेव के सम्मुख बैठ कर रथ को हाँकते हैं तथा घोड़ों को वश में रखते हैं, तो भी वे पीछे की ओर सूर्यदेव को देखते रहते हैं।

तात्पर्य : वायुपुराण में घोड़ों की स्थिति का वर्णन हुआ है—

सप्ताश्वरूपच्छन्दांसि वहन्ते वामतो रविम् ।

चक्रपक्षनिबद्धानि चक्रेवाक्षः समाहितः ॥

यद्यपि अरुणदेव सबसे आगे के आसन पर आसीन होकर घोड़ों को वश में रखते हैं, किन्तु वे अपनी बाईं ओर से पीछे मुड़कर सूर्यदेव को देखते रहते हैं।

तथा वालिखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तथा—वहाँ; वालिखिल्याः—वालखिल्य नामक; ऋषयः—ऋषिगण; अङ्गुष्ठ-पर्व-मात्राः—अँगूठे के आकार वाले; षष्टि-सहस्राणि—साठ हजार; पुरतः—सामने; सूर्यम्—सूर्यदेव; सु-उक्त-वाकाय—सुस्पष्ट बोलने के लिए; नियुक्ताः—नियुक्त किये गये; संस्तुवन्ति—स्तुति करते हैं।

अँगूठे के आकार वाले वालखिल्य नामक साठ हजार ऋषिगण सूर्य के आगे रहकर उनका स्वस्तिवाचन करते हैं।

तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते. ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तथा—इसी प्रकार; अन्ये—अन्य; च—भी; ऋषयः—ऋषिगण; गन्धर्व-अप्सरसः—गन्धर्व तथा अप्सराएँ; नागाः—नाग(सर्प); ग्रामण्यः—यक्ष; यातुधानाः—राक्षसगण; देवाः—देवता; इति—इस प्रकार; एक-एकशः—एक एक करके; गणाः—समूह; सप्त—सात; चतुर्दश—चौदह; मासि मासि—प्रत्येक महीने; भगवन्तम्—सर्वशक्तिमान देवता; सूर्यम्—सूर्य को; आत्मानम्—ब्रह्माण्ड का प्राण; नाना—अनेक; नामानम्—नाम वाला; पृथक्—भिन्न; नाना-नामानः—विभिन्न नाम वाला; पृथक्—भिन्न; कर्मभिः—अनुष्ठानों द्वारा; द्वन्द्वशः—दो के समूहों में, जोड़ों में; उपासते—उपासना करते हैं।

इसी प्रकार अन्य मुनि, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, राक्षस तथा देवतागण जो संख्या में चौदह हैं, किन्तु दो-दो के जोड़े में विभाजित हैं, प्रतिमास नया नाम धारण करके अनेक नामधारी, सर्वाधिक शक्तिमान देवता सूर्य के रूप में श्रीभगवान् की आराधना करने के लिए निरन्तर विभिन्न कर्मकाण्डों से उपासना करते रहते हैं।

तात्पर्य : विष्णु-पुराण में कहा गया है—

स्तुवन्ति मुनयः सूर्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः ।

नृत्यन्तोऽप्सरसो यान्ति सूर्यस्यानु निशाचराः ॥

वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभिषुसंग्रहः ।

वालिखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते ॥

सोऽयं सप्तगणः सूर्यमंडले मुनिसत्तम ।

हिमोष्ण वारिवृष्टीणां हेतुत्वे समयं गतः ॥

सर्वशक्तिमान सूर्यदेवता की आराधना करते समय गन्धर्व उनके समक्ष गाते हैं, अप्सराएँ रथ के समक्ष नाचती हैं, निशाचर रथ का पीछा करते हैं, पन्नग रथ को सजाते हैं, यक्ष रथ की रक्षा करते हैं और वालिखिल्य नामक ऋषिगण सूर्यदेवता को घेर कर स्तुति करते हैं। चौदह सहयोगियों के सात जोड़े ब्रह्माण्ड भर में हिम, ताप तथा वर्षा का उचित समय निश्चित करते हैं।

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवल्यस्य क्षणेन सगव्यूत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते . ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

लक्ष-उत्तरम्—१,००,००० अधिक; सार्ध—५०,००,००० सहित; नव-कोटि-योजन—१,००,००,००० योजन की; परिमण्डलम्—परिधि; भू-वल्यस्य—पृथ्वी गोलक का भूमण्डल; क्षणेन—एक क्षण में; सगव्यूति-उत्तरम्—दो कोस (चार मील) अधिक; द्वि-सहस्र-योजनानि—२,००० योजन; सः—सूर्यदेव; भुङ्क्ते—तै करता है।

हे राजन्, भूमण्डल की परिक्रमा करते हुए सूर्यदेव एक क्षण में दो हजार योजन तथा दो कोस (१६,००४ मील) की गति से ९,५१,००,००० योजन (७६,०८८०,००० मील) की दूरी तय करता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “सूर्य की गतियों का वर्णन” नामक इक्कीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।